डॉ. दीपक सिंह

वर्तमान में राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर में सहायक प्राध्यापक हिन्दी के पद पर कार्यरत हैं। शुरुआती शिक्षा गांव से लेने के बाद उन्होंने स्नातक से लेकर पीएचडी तक की अपनी पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की है। अध्ययन-अध्यापन में गहरी रुचि।

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर में हिंदी के असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। प्रारंभिक शिक्षा गांव और रीवा से। आगे की पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली से पीएचडी की उपाधि। आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर कई शोध आलेख प्रकाशित। आदिवासी जीवन और संस्कृति पर गंभीर अध्येता की छवि।

मूल्य : ₹ 350/-

रुद्रादित्य प्रकाशन
190 एम.आर/3-एन, ओ.पी.एस. नगर, कालिन्दीपुरम, प्रयागराज (उ.प्र.) पिन-211011 फोन 8187937731

ISBN 978-81-19335-59-6

साहित्य और पर्यावरण

डॉ. दीपक सिंह | डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

साहित्य और पर्यावरण

संपादक
डॉ. दीपक सिंह
डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

है। बीसवीं शदी के तीसरे दशक में ही जयशंकर प्रसाद ने अपनी कालजयी कृति कामायनी के माध्यम से समूची मानवजाति को भोग और विलास की संस्कृति के खतरे के खिलाफ चेतावनी देते हुए प्राकृतिक जीवन-दर्शन की रूप-रेखा हमारे सामने प्रस्तुत की थी लेकिन हमारी सत्ता संरचना ने उसका संज्ञान नहीं लिया—

बधी महावट से नौका थी, सूखे में अब पड़ी रही
उतर चला था वह जल-प्लावन, और निकलने लगी मही
निकल रही थी मर्म वेदना करुण विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती सी पहचानी सी !

अतिशय भोग और लालसा ने ही देव सभ्यता का विनाश किया था। यह त्रासदी ही कही जाएगी कि हमने कामायनी जैसी बौद्धिक उपलब्धि से कुछ नहीं सीखा। साथ ही गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित आर्थिक ढांचे और लालच की संस्कृति से बचने के प्रस्ताव को भी विकास के रास्ते में बाधा के रूप में देखा गया। स्थिति यहाँ तक आ पहुंची है कि न हवा साफ बची है न पानी। हमारे पूर्वजों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि एक दिन ऐसा भी आयेगा जब पानी, हवा, बाजार से खरीदे जायेंगे। विकास की तमाम ऊँचाइयाँ लांघ कर भी हम एक तितली का जीवन संरक्षित कर पाने में नाकाम हैं। आज पर्यावरण का जो संकट हमारे सामने खड़ा है वह अतिशय भोग और लालसा की ही उपज है।

प्रकृति से साहित्य का सम्बन्ध हवा-पानी की तरह है। पूरी दुनिया की लोक कथाओं, गीतों और प्रर्थानाओं में प्रकृति विविध रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रकृति की शक्ति, सौन्दर्य गान से शुरू हुई यह यात्रा आज पर्यावरण संकट से रूबरू है। एक युद्ध जैसी स्थिति हर समय हमारे समक्ष बनी हुई है। 'नई कॉलोनी' कविता में दिनेश कुमार शुक्ल लिखते हैं—

'अरावली पर्वतमाला फिर हार मानकर
आज और कुछ ज़्यादा पीछे खिसक गयी है
भय से आँखें बन्द किये मैं देख रहा हूँ
इन्द्रप्रस्थ के पास खांडव-वन को खाता
छिड़ा हुआ इक घमासान है–
जिसमें धरती हार रही है'

धरती की हार प्राणी-मात्र की हार होगी। धरती के संघर्ष में हम सभी को भागीदार बनना होगा और लौटना होगा प्रकृति की ओर। प्रस्तुत पुस्तक 16-17 मार्च 2023 को राजीवगांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अंबिकापुर में 'साहित्य और पर्यावरण' विषय पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़े गए पर्चों का संकलन है। उम्मीद है कि पुस्तकाकार रूप में यह पर्यावरणीय सरोकारों को बढाने और हिन्दी क्षेत्र में एक सार्थक बहस को संचालित करने में मददगार होगी।

●●●

अनुक्रम

भूमिका 5

1. आदिवासी साहित्य और प्रकृति का सह-अस्तित्व —डॉ. विश्वासी एक्का 9
2. मनुष्य का जीवन और पारिस्थितिकी तंत्र —नीलाभ कुमार 15
3. समकालीन साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —डॉ. के. आशा 22
4. लोक गीतों में प्रकृति के विविध रूप —अजय कुमार तिवारी 26
5. डॉ. श्यामसुन्दर दुबे के साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन —जीतन राम पैकरा 34
6. केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रकृति एवं खेती-किसानी —डॉ. बृजेश कुमार पाण्डेय 45
7. Climate Change and Water Crisis in Eco-films *Kadvi Hawa* and *Turtle* —Dr. Bhanupriya Rohila 51
8. Ecocritical Reading of Literature : Understanding the Silencing of Nature —Dr. R.P. Singh 60
9. टिकाऊ कृषि तंत्र एवं स्मार्ट कृषि-एक सैद्धांतिक विश्लेषण —डॉ. अनिल कुमार सिन्हा, दीपिका स्वर्णकार 68
10. पर्यावरण व पारिस्थितिकी का स्वरूप एवं अंतःसंबंध —वी सुगुणा 81
11. राजस्थानी चित्रकला में प्रकृति —कमल किशोर कश्यप 88
12. साहित्य में पर्यावरण संरक्षण एवं संचेतना : एस आर हरनोट —संजीव कुमार मौर्य 92
13. पर्यावरण व गहन पारिस्थितिकी : गाँधी एवं अंबेडकर की नजर से —गोपाल 104
14. बोधकथा साहित्य एवं पर्यावरण चिंतन —सुशील कुमार तिवारी 112
15. यह नरम-हरा-कच्चा संसार —ऋचा वर्मा 122
16. मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध तथा समकालीन हिंदी उपन्यास —प्रियंका जायसवाल, डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 129
17. हिंदी उपन्यासों में व्यक्त पर्यावरणीय प्रदूषण एवं खतरे —अक्षतानंद पाण्डेय 135
18. प्राकृतिक संसाधन का दोहन और पर्यावरणीय संकट —डॉ. क्रेसेन्सिया टोप्पो, डॉ. सुशील कुमार टोप्पो 142
19. पर्यावरण संरक्षण : हड़प्पा और वैदिक सभ्यता —डॉ. अजय पाल सिंह 147
20. आदिवासी साहित्य में जल-जंगल और जमीन का संघर्ष —डॉ. कुसुम माधुरी टोप्पो 150
21. कालिदास के साहित्य में पर्यावरण रक्षा के उपाय —राजीव कुमार 157

है। आज साहित्य के सौंदर्य से अधिक साहित्य के पर्यावरण पर बात करने की जरूरत है। लालची विकास ही पर्यावरण का शत्रु है, अतः यह अत्यधिक जरूरी है कि असन्तुलन को कम किया जाए। बराबरी से संसाधनों का बँटवारा हो, लूट पर रोक लगे, लाभ के सिद्धान्त को स्थगित किया जाए, सभ्यता को बचाने की चिन्ता से युक्त हुआ जाए।

संदर्भ :

डंगवाल वीरेन, कविता वीरेन, पहला संस्करण रू 2018, नवारूण प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ - 471

डंगवाल वीरेन, स्याही ताल, पहला सजिल्द संस्करण, 2009, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या- 9

डंगवाल वीरेन, स्याही ताल, पहला सजिल्द संस्करण, 2009, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या- 10

डंगवाल वीरेन, दुश्चक्र में स्रष्टा, दूसरी आवृत्ति, 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 19

डंगवाल वीरेन, दुश्चक्र में स्रष्टा, दूसरी आवृत्ति, 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 86

डंगवाल वीरेन, इसी दुनिया में, दूसरा नवीकृत संस्करण, 2015, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या- 67

पाण्डेय गोरख, जागते रहो सोने वालो, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1983, पृष्ठ संख्या-130-132

डंगवाल वीरेन, इसी दुनिया में, दूसरा नवीकृत संस्करण, 2015, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या- 52

■

मानव और प्रकृति का अंतर्संबंध तथा समकालीन हिंदी उपन्यास

प्रियंका जायसवाल

शोधार्थी, हिंदी विभाग

शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर (छ.ग.)

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक

राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अम्बिकापुर (छ.ग.)

मानव और प्रकृति के मध्य अटूट संबंध है। मनुष्य प्रकृति से भिन्न नहीं अपितु प्रकृति का ही एक अंग है। इन्हीं दोनों के मध्य के अंतर्संबंधों को साहित्य में कवि और लेखकों ने बहुत ही सूक्ष्मता और खूबसूरती के साथ चित्रित किया है।

समकालीन हिंदी उपन्यासों में रचनाकारों ने प्रकृति के माध्यम से मानव मन की अतल गहराई में दबी हुई भावनाओं को व्यक्त किया है। कभी मानव मन की आवाज के रूप में, तो कभी पहचान, कभी वेदना, तो कभी प्रणय कल्पनाओं की दूती के रूप में प्रकृति नजर आती है। आज जहाँ मानव भौतिकता और तकनीक की दुनिया में गुम होता जा रहा है साहित्यकार निरंतर उसे साहित्य के माध्यम से प्रकृति के सामीप्य सुख का एहसास कराता आ रहा है। रचनाकारों के द्वारा अपनी कथाओं में भाव बोधगम्यता लाने तथा उसे प्रवाह पूर्ण बनाने,प्रकृति के प्रति जागरूक करने हेतु, प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के साथ मानव और प्रकृति के अंतर्संबंधों को प्रभावपूर्ण शब्द शैलियों में व्यक्त किया गया है और यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मनुष्य प्रकृति के सानिध्य में स्वयं को अधिक सुरक्षित तथा प्रसन्नचित्त महसूस करता है।

कमलेश्वर द्वारा रचित उपन्यास 'वही बात' की कथा नायिका स्वयं को प्रकृति के निकट पाकर प्रसन्नता से भर उठती है और उसके हृदय की कोमल भावनाएँ पल्लवित और पुष्पित होने लगती है तथा वह अपने पति के और अधिक निकट आ जाती है।

''समीरा एकाएक आह्लाद से भर उठी। हर तरफ दूधिया चाँदनी छिटकी हुई थी, हर चीज जैसे दूध की झरती नदी में नहा उठी थी... नीचे घाटी दूधिया रोशनी में झिलमिला उठी थी। समीरा मुग्ध सी हर ओर देखती जा रही थी। समीरा बेसुध हो गई, इतना सौंदर्य! हे प्रभु! मैं कहीं मर ना जाऊँ यह तो स्वर्ग है।''[1]

मानव जब भौतिकता और क्षणिक विलास से भरी दुनिया से बाहर निकल कर प्रकृति के अनुपम सौंदर्य के समीप पहुँचता है तो अनंत सुख और सौंदर्य की अनुभूति करता हुआ तृप्त महसूस करता है। उसके भीतर की तमाम विकृतियां, कुंठा, अवसाद,आलस्य से वह धीरे-धीरे उबरता सा महसूस करता है।

''शाम को प्रशांत साइट से लौटा तो नया बंगला जंगली फूलों से सजा हुआ था। समीरा ने भी फूलों से ही श्रृंगार किया था। प्रशांत उसे देखता ही रह गया अरे वाह! इतनी सुंदरता!''[2]

मनुष्य अनंत काल से परमानंद और नैसर्गिक सौंदर्य की तलाश करता रहा है और इसकी अनुभूति वह प्रकृति के समीपस्थ करता है। जब-जब मनुष्य प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के निकट होता है तो उसे उसी परमानंद की अनुभूति होती है।

''अभी बसंत की चमकीली धूप थी, जो पेड़ों-पक्षियों और पानी में तिलस्मी रंग भर रही थी। रंग धरती से उठते और आकाश में अनार की तरह फूट जाते वे देर तक हाथों में हाथ डाले घूमते रहे...''[3]

लेखकों ने कथाओं में मानव मन की अतल गहराई में धंसे हुए एहसासों को सीधे ना व्यक्त कर प्रकृति पर मानवीकरण के माध्यम से किया है क्योंकि मानवीय भावनाओं का संबंध प्रकृति के बहुत निकट है और मानवीय संवेदनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त होने में एक आधारभूमि मिल जाती है। बसंत ऋतु के द्वारा, प्रकृति मनुष्य को अस्तित्व ज्ञान का बोध कराती है। बसंतकाल के दौरान पेड़-पौधे पुरानी पत्तियों को गिराकर कोमल नवीन पत्तियाँ धारण कर यह सीख देती हैं कि जीवन नश्वर है तथा हर सुख के बाद दुख आना है और हर दुख के बाद सुख का आना निश्चित है।

''सूर्य और पृथ्वी के चक्करों ने गर्मी के दिनों में ऐसी सुबह पैदा की थी जब सांवले उजाले में ठंडी बयार बह रही थी। चिड़ियां जाग रही थी, उनकी चहचहाहट अंधेरे के गड्ढे से निकलकर उजास में गूंज रही थी। आंगन में उजाले की भनक- भर थी, जो बाहर लान में चिड़ियों के साथ फुदक रहा था। सूर्य, पृथ्वी, हवा, चिड़िया और उजाले की कोई लय थी, जिसमें रामचंद्र सीता देवी बैठे थे।''[4]

मानव जीवन का लय प्रकृति कि लय में बंधा हुआ है वह मानव जगत को स्थिरता और एकाग्रचित्तता की लय में बाँधती है। प्रकृति, मनुष्य के भीतर आत्मीयता बोध का संचार करती है। प्रकृति के सानिध्य से मनुष्य के भीतर की तमाम विकृतियां समाप्त हो जाती है और वह स्वयं को उल्लासित महसूस करता है।

''नीचे झुकी डाल से एक फूल शाल्मली ने हाथ बढ़ाकर तोड़ा और उसकी कांपती-थरथराती रोएंदार बेशुमार पंखुड़ियों को निहारा। कितनी संवेदना है! कितना कंपन है! कितनी कोमलता है! उसने धीरे से फूल को सूंघा आह्लाद की एक लहर नासिका से होती मस्तिष्क में पसर गई। मन यूँ हल्का हो गया, जैसे अभी-अभी जन्मा हो कोई दुख, कोई क्लेश, कोई टीस की परछाई भी नहीं। ऐसे समय में शाल्मली को लगता उसकी आंखों की ज्योति दोगुनी हो गई है और प्रकृति की रंगीन छटा के रंग अधिक धुले चमकीले हो गए हैं। चिड़ियों की चहचहाहट उसे वीणा वादन की तरह अलौकिक लगने लगती थी। ऐसे मौकों पर शाल्मली को विश्वास होने लगता है कि सौर्य मंडल प्रकृति और मानव शरीर के तत्वों का आपसी संबंध बहुत घनिष्ठ है।''[5]

प्रकृति, मानव को संवेदना से भर देती है। यदि मनुष्य संवेदनहीन हो जाए तो वह असभ्य, आवारा पशु के समान हो जाएगा। संवेदना मनुष्य को मानवता की राह पर चलने की सीख देती है और उसे प्रेम करना सिखाती है और जिस मनुष्य के भीतर संवेदना और प्रेम हो वह कभी किसी का अहित नहीं कर सकता है। मानव प्रकृति के सानिध्य में मानवीय व्यवहारिक शिक्षा के साथ-साथ अन्य प्राणी से प्रेम करना भी सिखाता है। फूलों के सुगंध में भी एक राग एक आकर्षक होती है जो मन एवं मस्तिष्क को प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

''पीली-गर्म फैली धूप के नीचे फूले अमलतासों के पीले फूलों से लदे वृक्षों के बीच में गुलमोहर की लाली रंगों की अद्भुत छटा बिखेर रही थी। शाल्मली के जीवन में ऐसा ही बसंत आया था जो अमलतास की तरह दिल और दिमाग में एक साथ फूला था।''[6]

प्रकृति, मनुष्य को अवसादों से उबारती है और हृदय में शांति तथा मन को प्रसन्नता से भर देती है। आज के भौतिकवादी टेक्नोलॉजी, बनावटी दुनिया में व्यस्त मनुष्य बहुत ही जल्दी अवसाद से घिर जाता है और उसके भीतर धीरे-धीरे जीवन प्रत्याशा कम होने लगती है। कुछ लोग तो अवसाद की स्थिति में यहाँ तक पहुँच जाते हैं कि आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसे में इस जटिलतम दुनिया से ऊबकर मानव जब नैसर्गिक सौंदर्य से पूर्ण प्रकृति के समीप पहुँचता है तो वह फिर से जी उठता है। उसके भीतर जीवन जीने की अभिलाषा बढ़ती है। वह भौतिकता से परे तथा प्रकृति के समीप में आने को आतुर होने लगता है।

प्रकृति मनुष्य को जीवन प्रदान करती है। वह प्रकृति की गोद में ही खेल-कूद कर बड़ा होता है किंतु बड़े होने के साथ ही उसके मन में कई तरह के स्वार्थों का जन्म होता है। कई आकांक्षाएँ पैदा होती है। उसके भीतर तमाम तरह की भौतिक सुख सुविधा की चाहत बढ़ती ही जाती है। इसी को पूरा करने की आकांक्षा में वह प्रकृति को क्षति पहुँचाने, उसका दोहन करने से भी पीछे नहीं हटता। आज मनुष्य स्वार्थवश सिर्फ अपना फायदा देख रहा है इसीलिए वह किसी न किसी रूप में प्रकृति का निरंतर दोहन और शोषण कर रहा है। मनुष्य इस बात से अनभिज्ञ है कि वह प्रकृति का नुकसान नहीं पहुँचा रहा है बल्कि धीरे-धीरे स्वयं को ही समाप्त करने के लिए रास्ता तैयार कर रहा है।

"वह शिरीष के फूलने की ऋतु थी। गली, मकान, चबूतरे, आंगन सब महक उठे थे, पंक्तिबद्ध खड़े शिरीष के वृक्ष किसी षोडशी की तरह भरे- पूरे अपने ही रूप लावण्य के बोझ से लदे- फंदे जलती दोपहर में लू के डोले पर सवार पीली धूप में नहा रहे थे।"[7]

प्रकृति में अनुपम सौंदर्य है और इसी सौंदर्य और ऐश्वर्य की अनुभूति जब मानव करता है तो उसे परमानंद सुख की प्राप्ति होती है और वह तृप्त हो उठता है। प्रकृति, मनुष्य को स्थिरता प्रदान करती है उसे जीवन के अनेकानेक रहस्यों के भेद को जानने, समझने के लिए प्रेरित करती है।

"आज पूर्णिमा की सफेद उजली चांदनी से छत भर उठी थी। एक ठंडक थी, जो चंद्रमा से नीचे धरती पर बरस रही थी। थकी शाल्मली कमरे से छत पर आई। एकाएक यह मनोहर दृश्य देखकर भौंचक-सी रह गई। उसने चारों तरफ एक नजर डाली, फिर भरपूर अंगड़ाई ली। थकान पीले पत्तों के समान झरने लगी। रोम-रोम में दूधिया चाँदनी की परतें बिकने लगीं।"[8]

मनुष्य भौतिक जीवन से थक कर जब स्वयं को प्रकृति के समीप पाता है तो सारी थकान भूल जाता है। वह बहुत ही सुकून महसूस करता है। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा माँ की गोद में स्वयं को बहुत ही सुरक्षित एवं तृप्त महसूस करता है उसी प्रकार मनुष्य प्रकृति रूपी माँ के गोद में स्वयं को थकान से मुक्त, तृप्त एवं आनंदमय महसूस करता है। प्रकृति का सानिध्य मनुष्य को कई एहसासों से भर देता है जैसे शाल्मली सोचती है कि काश वह पक्षी होती और वह दोनों बाहें फैला दी है और चांदनी को बाहों में भरती सी खुली छत पर आहिस्ता कदम रखते हुए आगे बढ़ती है।

"मैं केवल एक सूखा वृक्ष भर रह गई हूँ। न फल, न फूल, न शाख, ना पत्ती, न छाया, न ठंडक, ऐसे सूखे वृक्ष की शरण में भला कौन आना पसंद करेगा? धरती ने भी जैसे अपने स्रोत समेट लिए हैं, तभी तो मेरी जड़े तरावट को तरसती, धरती छोड़ने लगी

हैं ऐसा सूखा छायारहित, ठूँठ वृक्ष तो बस जलाने के काम का रह जाता है, लपटों के बीच कोयला बनती काली काया।"[9]

मनुष्य, प्रकृति के माध्यम से सिर्फ अपनी खुशियों को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि अपने भीतर की कुंठा, पीड़ा, तनाव, दर्द को भी व्यक्त कर देता है। अपनी सारी तकलीफें प्रकृति को सुना कर स्वयं को बहुत हल्का महसूस कर पाता है।

"शाल्मली के अंदर मीलों तक सूखे वृक्षों का वन फैल गया है। गिरती गर्म धूप और सर पर कोई छाया नहीं। इच्छा का कोई मृगछौना नहीं। सामने देखो, तो मीलों तक सूखे तनों की भूलभुलैया, ऊपर आकाश की तरफ दृष्टि घुमाओ, तो मृत टहनियों का जाल फैला नजर आता है। अमृत खोजा, जो मिल न पाया और संजीवनी बूटी का पता उसे नहीं मिला, जो इस सूखे जड़ों वाले वृक्षों को अमृत-पान कराके अमर बना देती। अब सूखी लकड़ियों के इस वन में वह कब तक मृगणा बनी भटकती रहेगी?"[10]

प्रकृति सदैव मनुष्य को जीवन का अर्थ समझाती है तो कभी जीवन दर्शन बनकर मनुष्य का मार्गदर्शन करती है। प्रकृति, मनुष्य को परिपक्व बनाती है तथा उसे स्वयं को जानने के लिए समझ विकसित करती है। मनुष्य भी अपनी वेदना, पीड़ा को प्रकृति के समीप जाकर अभिव्यक्त कर पाता है। प्रकृति और मनुष्य के बीच का अंतर संबंध बहुत ही गहरा है।

"पुरुष भूमि है, आकाश है, हवा है, अग्नि है, जल है, लेकिन स्त्री बीज बनकर धरती के नीचे दबना जानती है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई पूरा जंगल हो जाती है।"[11]

स्त्री और पुरुष के बीच के अंतर संबंधों को प्रकृति के माध्यम से, दार्शनिकता के साथ बहुत ही खूबसूरती से छिन्नमस्ता उपन्यास की लेखिका प्रभा खेतान के द्वारा व्यक्त किया गया है। लेखिका ने इन पंक्तियों में स्त्री-पुरुष के संपूर्ण जीवन-सार को परिभाषित कर दिया है बहुत ही मधुरता से। प्रकृति, मनुष्य को जीवन-दर्शन का बोध कराती है। हम कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण सार प्रकृति में ही निहित होता है। मनुष्य स्वार्थवश देख नहीं पाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मानव और प्रकृति के अंतर्संबंधों को समकालीन हिंदी उपन्यासों में लेखकों ने बहुत ही मनोवैज्ञानिक तथा खूबसूरती के साथ व्यक्त किया है। प्रकृति के बिना मानव का वजूद (अस्तित्व) शून्य है।

प्रकृति ने अपने अनेकानेक स्वरूपों से मानव जीवन को सुखी तथा संतुलित बनाया है इसके बावजूद आज का भौतिकवादी, सुख की कामना में स्वार्थी प्रवृत्ति में तल्लीन मानव,